शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील 卐

अक्टूबर : १९६० ☆ वर्ष सोलहवाँ, आसोज, वीर नि०सं० २४८६ ☆ अंक : ६

रत्नत्रय के दीपों से

दीपावली उत्सव मनायें

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्ण आराधना द्वारा भगवान महावीर ने आज मोक्ष प्राप्त किया। वह परम आनन्दमय सिद्धपद सर्व जीवों को इष्ट है; साधक संतों के हृदय में उसकी स्तुति अंकित है, और आत्मार्थी जीवों के द्वारा वह परम अभिनंदनीय है।—ऐसा सिद्धपद आज भगवान ने पावापुरी-धाम से प्राप्त किया; उसका स्मरण कर-करके भक्तजन हर्ष पूर्वक उस सिद्धपद का महोत्सव मनाते हैं।

जिसने मोक्ष की आराधना का भाव प्रगट किया, उसने अपने आत्मा में रत्नत्रयरूपी दीपों से दीपावली महोत्सव मनाया। भगवान महावीर के मार्ग को प्राप्त करके, ज्ञानी गुरुओं के आशीर्वाद से हम भी अपने आत्मा में रत्नत्रय की आराधना करें, और इस प्रकार रत्नत्रयरूपी दीपों की ज्योति से दीपावली महोत्सव मनायें!

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१८६]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

मुक्ति का मार्ग (दूसरी आवृत्ति)

जिसमें सभी जिज्ञासुओं को समझने में सुगम शैली है। हित के मार्ग में प्रवेश करनेवालों को प्रथम किस किस बात का ज्ञान जरूरी है वह बात मुख्यरूप से है—थोक लेकर प्रचार कीजिये पृ० संख्या १०२, मूल्य ५० नया पैसा।

गुजराती भाषा में 'द्रव्यसंग्रह' (नई आवृत्ति)

तत्त्वार्थ सूत्र के समान द्रव्यसंग्रह भी प्रायः प्रत्येक जैन पाठशाला में पढ़ाया जाता है, आज तक अनेकों आवृत्तियाँ प्रगट हो चुकी हैं किन्तु सर्व विद्यार्थी जिज्ञासुओं को अभ्यास करने में उपयोगी हो सके, जैनेतर बन्धु भी जैन धर्म की विशेषता समझ सकें ऐसी शैली में इसका नया संस्करण तैयार हुआ है। साथ में लक्षण तथा भेद संग्रह तथा लघु द्रव्य संग्रह भी बढ़ा दिया है। बढ़िया कागज पृ० संख्या २२० मूल्य ८३ नये पैसे, पोस्टेज २० नये पैसे अलग।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर

पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नोट–गतांक नं० १८३ में 'द्रव्यसंग्रह' का मूल्य गलती से ८३ नये पैसे के बजाय ६० नये पैसे छप गया था, पाठकगुण सुधार लें।

★

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील 卐

अक्टूबर : १९६० ☆ वर्ष सोलहवाँ, आसोज, वीर नि०सं० २४८६ ☆ अंक : ६

कारण शुद्ध पर्याय

[११]

(नियमसार गाथा-१५)

अंक १८५ से आगे

'कारणशुद्धपर्याय'—जो कि नियमसार का एक मुख्य विषय है, उसके प्रवचनों की यह लेखमाला इस अंक में समाप्त हो रही है। इन प्रवचनों का गूढ़ अध्ययन करनेवाले जिज्ञासुओं को ज्ञात हो जायेगा कि संतों ने कारण और कार्य की संधि का कैसा अद्भुत-अन्तर्मुखी वर्णन किया है! इसका मनन-मंथन करने वाले आत्मार्थी के अंतर में ऐसी भावोर्मियाँ स्फुरित होती हैं मानों परिणति उल्लसित हो-होकर 'कारण' से भेंट करती हो! वास्तव मे, अपना हितकार्य करने के कामी जीवों को उसका यथार्थ कारण दर्शाकर संतों ने महान उपकार किया है। 'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति', इस उक्ति के अनुसार, उन संतों के उपकार का पुनः पुनः स्मरण करके उन्हें नमस्कार करते हैं।

आत्मा की 'कारणशुद्धपर्याय' का वर्णन चल रहा है। जिसमें कर्म की अपेक्षा नहीं है, ऐसी यह स्वभावपर्याय प्रत्येक आत्मा में त्रिकाल विद्यमान है... वह त्रिकाल आनन्द में डूबी हुई है। किन्तु जब उसे जान लेता है, तब उसका अनुसरण करके स्वभाव कार्य प्रगट करता है। कार्य त्रिकाल नहीं होता; यह कारण त्रिकाल है; जब उसका अवलम्बन करे, तब उस कारण जैसा निर्मल कार्य नवीन प्रगट होता है। इसलिये ऐसा कार्य प्रगट कराने के लिये यहाँ 'कारण' की महिमा बतलाते हैं।

हे जीव! तू सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्ध दशा तक का जो शुद्ध कार्य प्रगट करना चाहता है,

उसका कारण होने की शक्ति तेरे आत्मा में ही है। किसी भी बाह्य पदार्थ में तेरा सम्यग्दर्शनादि का कारण होने की शक्ति नहीं है; वह शक्ति तो तेरे आत्मा में ही वर्त रही है.... इसलिये अंतर्मुख होकर एक बार उसकी प्रतीति कर। उसका ज्ञान होते ही तुझे ऐसा लगेगा कि अहो! मेरा कारण तो मुझमें ही था, किन्तु अभी तक मैं उसे भूला हुआ था, इसलिये मेरा कार्य नहीं हुआ.... अब मुझे कारण की महिमा मालूम हुई। इसप्रकार कारण-कार्य की संधि होने पर तेरे आत्मा में अचिन्त्य चैतन्य तरंगें उल्लसित होंगी।

'नियमसार' अर्थात् शुद्ध रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्ग; वह नियम से करने योग्य कार्य है। यह 'कार्य', सो वर्तमान पर्याय है; उस कार्य के साथ उसका 'कारण' भी वर्तमानरूप बतलाकर संतों ने अद्भुत बात की है। 'कारणशुद्धपर्याय' कहो या 'कार्य का वर्तमान कारण' कहो।

कैसी है कारणशुद्धपर्याय? आत्मा के त्रिकाली स्वभावभूत जो सहज चतुष्टय, उसके साथ रहनेवाली पूजित पंचमभाव-परिणति, वह कारणशुद्धपर्याय है। अहा, आचार्यदेव कहते हैं कि यह परिणति पूजित है—आदरणीय है, आश्रय करने योग्य है। देखो, इसे 'परिणति' कहा है, किन्तु यह व्यवहारनय का विषय नहीं है; यह तो सहज शुद्ध निश्चयनय का विषय है। सहजशुद्ध निश्चयनय से आत्मा को लक्ष में लेने पर उसमें यह कारणशुद्धपर्याय भी साथ ही आ जाती है, इसे गौण नहीं किया जा सकता; यह तो द्रव्य के साथ त्रिकाल तन्मयरूप से वर्तती हैं।

१- अतीन्द्रियस्वभावी सहजज्ञान, जो कि अनादि-अनंत है।

२- अतीन्द्रियस्वभावी सहज दर्शन, जो कि अनादि-अनंत है।

३- अतीन्द्रियस्वभावी सहज चारित्र, जो कि अनादि अनंत है, और

४- अतीन्द्रियस्वभावी सहज परमवीतराग सुख, जो कि अनादि अनंत है।

—ऐसे स्वभावचतुष्टय आत्मा में त्रिकाल हैं और वह आत्मा का शुद्ध-अंतःतत्त्व है। आत्मा के अंतरंग तत्त्वरूप जो यह त्रिकाली स्वभावचतुष्टय, उसके साथ वर्तती हुई पूजित पंचमभाव परिणति, सो कारणशुद्धपर्याय है। यह कारणशुद्धपर्याय औदयिकादि चार भावों रूप नहीं है किन्तु पंचम पारिणामिकभावरूप है और कर्मों से त्रिकाल निरपेक्ष है। अनादि-अनंत आत्म-आकाररूप वर्तती हुई ऐसी यह स्वभावभूत कारणपरिणति, वह निर्मलकार्य का कारण है; कारणपरिणति कहीं आत्मा से पृथक् नहीं है; कारणपरिणति रूप से वर्तता हुआ सम्पूर्ण आत्मा ही समस्त निर्मल पर्यायों का कारण है।—ऐसा भगवान कारणपरमात्मा प्रत्येक जीव को उपादेय है.... वह कोई अन्य नहीं

किन्तु स्वयं ही है। अहो! परमपारिणामिकभाव की परिणति से शोभित चैतन्य भगवान एक धारा में विराजमान है... अनादि अनंत एकधारा में जब देखो तब परिपूर्ण, वर्तमान वर्तता हुआ कृपानिधान परमात्मा विराजमान है-शोभायमान है.... हे जीव! उसी को तू अपना कारण बना और बाह्य कारण ढूंढ़ने का भ्रम छोड़! अहा, जहाँ स्वत: अपने में पूर्णता भरी हुई है, वहाँ दूसरे की क्या अपेक्षा?

देखो, यह निरपेक्ष स्वभाव! जिसप्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल, यह चारों द्रव्य त्रिकाल शुद्ध हैं, निरपेक्ष एकरूप से सदैव वर्तते हैं, उसीप्रकार आत्मा को भी यदि उसके निरपेक्ष-स्वभाव से देखें तो, मोक्ष के समय या साधकदशा के समय वह सदैव एकरूप शुद्धरूप से ही वर्तता है... अपने सहज स्वभाव चतुष्टयसहित पंचमभाव परिणति से सदैव शोभायमान है। मुनिराज कहते हैं कि ऐसी परिणति से सुशोभित आत्मा पूजित है, क्योंकि वह केवलज्ञान का दातार है।—ऐसे कारण के अवलम्बन से केवलज्ञान कार्य को साधते-साधक साधक संतों के हृदय में से यह उद्‌गार निकले हैं।

जिस प्रकार धर्मास्तिकायादि द्रव्यों में उदयादि की अपेक्षा रहित पारिणामिकभावरूप से सदा परिणमन है... तो उसकी अपेक्षा महान—महिमावन्त ऐसा जो चैतन्य भगवान आत्मा, उसे भी कर्म के उदयादि की अपेक्षा रहित परिणति पारिणामिकभावरूप से वर्तती है.... उस निरपेक्ष स्वभावपरिणति का नाम—'कारणशुद्धपर्याय।'

ज्ञानावरणादि कर्मों के नाश से जो केवलज्ञानादि पर्याय प्रगट हुई, वह भी स्वभावपर्याय है तथा उसे इन्द्रियादि की अपेक्षा नहीं है, इस अपेक्षा से उसे निरपेक्ष कहा जाता है; किन्तु कर्मक्षय के साथ उसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, इतनी अपेक्षा उसमें आती है; जबकि इस कारणशुद्धपर्याय में तो कर्म के साथ के निमित्त-नैमित्तिक संबंध की भी अपेक्षा नहीं है, वह तो द्रव्य के साथ त्रिकाल निरपेक्षरूप से वर्तती है!

यह ध्यान में रखना कि वर्तमान पर्याय में अज्ञान-ज्ञान, राग-वीतरागता, संसार-मोक्ष इत्यादि कार्य जीवों के वर्तते हैं, उस कार्य के स्वीकारपूर्वक की यह बात है। यदि उस कार्यपर्याय को स्वीकार न करे, 'कार्य के बिना कारण किसका?'—इसलिये पर्याय में शुद्ध-अशुद्ध कार्य के स्वीकार पूर्वक ही, शुद्ध कार्य के कारणरूप इस 'कारणशुद्धपर्याय' का यथार्थ स्वीकार होता है। 'यह मेरी शुद्धता का कारण'—ऐसा वही कह सकता है कि जिसने कारण के आश्रय से शुद्ध कार्य प्रगट किया हो। इसप्रकार कार्य-कारण की संधिपूर्वक की यह बात है। (इस मुख्य विषय का स्पष्टीकरण इस लेखमाला में पहले कई बार आ चुका है।)

यह कारणशुद्धपर्याय वर्तमानरूप है। यदि वह वर्तमानरूप न हो तो वर्तमान कार्य भी शुद्ध नहीं हो सकता। शुद्ध कार्य जिसप्रकार वर्तमान में होता है, उसीप्रकार उसका शुद्ध कारण भी वर्तमान वर्तता है। इसप्रकार कारणशुद्धपर्याय अपने स्वाभाविक-चतुष्टय वैभवसहित वर्तमान वर्तती है, किन्तु वह कभी उत्पाद-व्ययरूप नहीं है; उत्पादरूप से उसका अनुभव नहीं है। यदि उसका उत्पादरूप अनुभव हो, तब तो वह कार्य हो जाये और त्रिकाल अनंतचतुष्टय का प्रगट अनुभव हो; परन्तु ऐसा तो है नहीं। अनंत चतुष्टय का प्रगट अनुभव तो तभी होता है कि जब कारण का आश्रय करके शुद्ध कार्य प्रगट करे। यदि यह एकरूप धारावाही कारणशुद्धपर्याय आत्मा के साथ त्रिकाल न हो, तो स्वभाव का त्रिकाल सामर्थ्य और वैसा ही उसका परिपूर्ण वर्तमान - उन दोनों के अभेदरूप अखण्ड पारिणामिकभाव सिद्ध कैसे होगा? वर्तमान पूर्ण सामर्थ्य की सिद्धि के बिना त्रिकाल पूर्ण-सामर्थ्य की सिद्धि कहाँ से होगी? वर्तमान पूर्ण सामर्थ्यरूप से वर्तती हुई जो कारणशुद्धपर्याय, उसके आश्रय से मोक्षकार्य प्रगट होता है। वर्तमान पूर्ण कार्य प्रगट करने के लिये यदि वर्तमान में पूर्ण आश्रय न हो, तब तो कार्य के लिये भूत-भविष्य में दौड़ना पड़ेगा! परन्तु वर्तमान कार्य के लिये जिस प्रकार पर का आश्रय नहीं है, उसीप्रकार वर्तमान कार्य को भूत-भविष्य का भी आश्रय नहीं है; वर्तमान कार्य का आश्रय भी वर्तमानरूप ही है।—यदि दोनों वर्तमानरूप न हों तो कारण-कार्य की एकता कहाँ से होगी? इसलिये आत्मा स्वयं कारणशुद्धपर्यायरूप से वर्तता हुआ अपने शुद्ध कार्य का आश्रय है।

कारणशुद्धपर्याय का वैभव कैसा है? कि तीनों काल जिसमें सहजज्ञान के भंडार भरे हैं, तीनों काल जिसमें सहजदर्शन के भंडार भरे हैं, तीनों काल जिसमें सहजचारित्र के भंडार भरे हैं और तीनों काल जिसमें सहज वीतरागसुख के भंडार भरे हैं। अहा! ऐसे सहज-चतुष्टय के भंडार से परिपूर्ण ऐसी पूजित पंचमभाव परिणति (कारणशुद्धपर्याय) आत्मा में वर्तती है। हे जीव! अपने इस भंडार में से तू केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टय प्रगट कर... अनंत काल तक तू उसमें से केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय निकालता रहे, तथापि कभी उनकी कमी नहीं पड़ सकती—ऐसा अटूट है वह भंडार! ऐसा भंडार जब तेरे पास है, तब तू पराश्रय की भीख किसलिये माँगता है?—बाह्य कारणों को क्यों ढूँढ़ता है?—अंतर्मुख हो और अपने चैतन्यभंडार को देख! अहो! मुनिवरों ने वस्तु के वैभव को प्रसिद्ध किया है।

यहाँ स्वभावचतुष्टय में जो 'सहज परम वीतरागसुख' कहा, उसमें 'वीतराग' कहने से ऐसा

नहीं समझना चाहिये कि पहले राग था और फिर दूर हुआ; परन्तु वह तो स्वभाव से ही सदा राग रहित है। चैतन्य भगवान अपने स्वभाव अनंत चतुष्टय की सहज परिणति के साथ ही तीनों काल विराज रहा है, एक समय भी उस परिणति का उसे विरह नहीं है।—ऐसी उसकी स्वरूपपरिणति सहित वह पूजनीय है—उपादेय है—सेव्य है। निर्मल परिणति द्वारा ही उसकी यथार्थ पूजा-उपासना-सेवा होती है; कार्य द्वारा कारण की सेवा होती है.... कारण के सेवन अनुसार कार्य की निर्मलता होती है। जो शुद्ध कारण का सेवन करे, उसे शुद्ध कार्य (सम्यक्त्वादि) होता है। तथा जो अशुद्ध कारण का (रागादि का) सेवन करता है, उसे अशुद्ध कार्य (मिथ्यात्वादि) होता है।

जैसा त्रिकाल स्वभाव, वैसा ही उसका वर्तमान; जैसा त्रिकाल सामान्य, वैसा ही उसका वर्तमान विशेष—इसप्रकार परमपारिणामिकस्वभाव से आत्मा सदैव वर्त रहा है। अकेले स्वभाव की ही अपेक्षावाली जो एकरूप धारावाही परिणति है, वही कारणशुद्धपर्याय है तथा वह पूजनीय है। त्रिलोकनाथ अरहंत और सिद्ध भगवन्त भी इस परमपारिणामिकभाव की पूजित परिणति का सेवन कर करके ही अरहंत और सिद्ध हुए हैं। इसलिये मुनिराज कहते हैं कि हे भव्य जीवों! तुम भी उसी का सेवन करो। स्वयं उसके सेवन द्वारा सिद्धपद को साधते-साधते कहते हैं कि हे सखा! तू भी इसका सेवन कर.... चल न मेरे साथ मोक्ष में!

जिसप्रकार समुद्र, समुद्र के पानी का समूह और उसकी सतह-वे एकरूप हैं और ऊपर विविध प्रकार की तरंगें उठती हैं तथा शांत होती हैं। उसी प्रकार आत्मा में त्रिकाली द्रव्य, उसके गुण तथा पारिणामिकभाव से वर्तती हुई उसकी परिणति, वे एकरूप हैं, और जो उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें हैं, वे विविध हैं, उनमें उदयादिभाव होते हैं, वे उत्पन्न होकर दूसरे ही क्षण विलय को प्राप्त होती हैं; जबकि कारणशुद्धपर्याय में तो पारिणामिकभावरूप एक ही प्रकार है; वह कभी विलय को प्राप्त नहीं होती, सदैव एक धारा से वर्तती है।

यह कारणपर्याय सदा शुद्ध है। कार्यपर्याय में शुद्ध और अशुद्ध ऐसे भेद हैं किन्तु कारण तो सदा शुद्ध ही है, उसमें शुद्ध और अशुद्ध ऐसे प्रकार नहीं हैं, तथा उसे अशुद्धता का कारणपना भी नहीं है। प्रगट पर्याय में अशुद्धता हो, तब भी कारणशुद्धपर्याय में अशुद्धता नहीं है। कारणशुद्ध-पर्याय तो शुद्धता का ही कारण है। उसमें 'पर्याय' शब्द आने से ऐसा नहीं समझना कि वह पर्यायदृष्टि का विषय है। वह पर्याय, द्रव्य के साथ सदा तन्मयरूप से वर्तती हुई द्रव्यदृष्टि के विषय में समा जाती है। त्रिकाली सम्पूर्ण द्रव्य का एक वर्तमान भेद होने से उसके लिये 'पर्याय' शब्द का

प्रयोग किया है... और वर्तमान कार्य (मोक्षमार्ग) करने के लिये उसका वर्तमान कारण बतलाया है। इस कारण पर जिसकी दृष्टि का बल है, उसके सम्यग्दर्शनादि कार्य होते हैं।

सर्व पदार्थों का ज्ञाता तथा सर्वोत्तम महिमावाला यह चैतन्यमूर्ति आत्मा है; उसके अंतर में वर्तमान में क्या-क्या वर्त रहा है, उसकी यह बात है। किसी को यह नई मालूम हो और जल्दी समझ में न आये, तब भी ऐसे लक्षपूर्वक समझना चाहिये कि यह मेरे स्वभावसामर्थ्य की अचिन्त्य महिमा का गुणगान हो रहा है। स्वभाव के बहुमान के संस्कार भी मोह को अत्यन्त मन्द कर देते हैं।

यह 'कारणशुद्धपर्याय' कहकर संत और ज्ञानी ऐसा बतलाते हैं कि अरे जीव! तुझमें प्रतिसमय परिपूर्णता वर्त रही है, शुद्धता का पूर्ण कारण जब देख तब मुझमें उपस्थित ही है; बाह्य में कारण ढूँढ़ने के लिये जाना पड़े, ऐसा नहीं है। इसलिये अंतर्मुख हो! अंतर्मुख होकर उस कारण के आश्रय से अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कार्य को प्रगट कर। यही नियम से कर्तव्य है।

चैतन्य भगवान के पास उसकी—तैयार सजी हुई तलवार जैसी—कारणशुद्धपरिणति उपस्थित ही है, उसे देखकर हाथ में ले इतनी देर है.... उस कारण को हाथ में लेते ही (-उसका आश्रय करते ही) अनन्त-संसार कट हो जाता है। भगवान कारणपरमात्मा अपनी कारणशुद्ध-परिणतिरूप सिंहासन पर सदा विराजमान है,—कारणपरिणति से परिपूर्णतः सदैव शोभायमान है।—ऐसी पूर्णता को जो मानेगा, वह उसे प्राप्त करेगा... जो अपूर्ण ही मानेगा, वह अधूरा ही रहेगा।

स्वभावभूत जो कारणशुद्धपर्याय, उसके आश्रय से प्रगट होनेवाला पूर्ण कार्य कैसा है अर्थात् स्वभावभूत कार्यशुद्धपर्याय कैसी है, सो अब कहते हैं—केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख और केवलशक्ति—ऐसे अनंत-चतुष्टययुक्त परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, सो कार्यशुद्धपर्याय है। जिसप्रकार 'कारण' में चतुष्टय लिये थे, उसीप्रकार इस 'कार्य' में भी चतुष्टय लिये हैं; किन्तु दोनों में उन चार गुणों के साथ अन्य अनंत गुणों की बात भी साथ ही समझ लेना चाहिये।

कारणशुद्धपर्याय में जो चतुष्टय कहे, वे अनादि-अनंत थे, और इस कार्यशुद्धपर्याय में जो चतुष्टय कहे, वे सादि-अनंत हैं। कारणशुद्धपर्याय त्रिकाल कर्म की उपाधि से रहित हैं और कार्यशुद्धपर्याय प्रगट होने के पश्चात् सदैव कर्म की उपाधि से रहित हैं। कारणशुद्धपर्याय, सहजशुद्धनिश्चयनय का विषय है और यह कार्यशुद्धपर्याय, शुद्धसद्भूत-व्यवहारनय का विषय है।

देखो, यह कारण-कार्य की अद्भुत बात! यह किसलिये समझाते हैं?—कि ऐसा पूर्ण

शुद्ध कार्य प्रगट करना, वह कर्तव्य है... और वह कार्य कारणस्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है।—ऐसा जानकर अन्य सबका आश्रय छोड़कर एक कारणस्वभाव का आश्रय करना, वह इस उपदेश का तात्पर्य है।

अहो! जंगल में बैठे-बैठे मुनिवरों ने सिद्ध परमात्मा-समान अपना जो कारणपरमात्मा... उसके साथ ध्यान की केलि करते-करते आनन्द का समुद्र उछाला है।

इसप्रकार कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय—ऐसे दो प्रकार से जीव की स्वभावपर्याय का वर्णन किया। और अब छहों द्रव्यों की अपेक्षा से स्वभावपर्याय कहते हैं—छहों द्रव्यों को साधारण और सूक्ष्म ऐसी अर्थपर्यायें, वे शुद्ध हैं; वह सूक्ष्म-ऋजुसूत्रनय का विषय है तथा षट्गुणवृद्धि-हानि सहित है। इसप्रकार पहले जीव की स्वभावपर्यायों का और फिर छहों द्रव्यों की स्वभावपर्यायों का वर्णन किया।

नर-नारकादि पर्यायें, वे जीव की विभावपर्यायें हैं। जो जीव पर्यायबुद्धिवाला है अर्थात् विभावपर्याय को ही अपना स्वरूप मानता है, वह जीव विभावपर्यायोंरूप से परिणमित होता हुआ नये-नये शरीर धारण करके चार गति में भटकता है। ज्ञानी तो, 'चिदानन्दी कारणपरमात्मा ही मैं हूँ'—ऐसा जानकर उसी की भावना द्वारा निर्मल पर्यायोंरूप से परिणमित होता हुआ सिद्धपद को प्राप्त होता है।

* * *

पद्मप्रभमुनिराज श्लोक द्वारा कहते हैं कि बहु विभाव होने पर भी, सहज परमतत्त्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है, ऐसा यह शुद्ध दृष्टिवाला पुरुष, 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है'—ऐसा मानकर शीघ्र मुनि प्राप्त करता है। देखो, यह निश्चय-व्यवहार की संधि! '....विभाव होने पर भी....' ऐसा कहकर पर्याय में व्यवहार है, उसका सवीकार किया, किन्तु 'समयसार से अन्य कुछ नहीं है' ऐसा कहकर शुद्धदृष्टि में उसका अभाव बतलाया। इसप्रकार शुद्धदृष्टि के बल से विभाव का निषेध करके धर्मी जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

प्रवीण कौन है?—कि जिसकी बुद्धि सहज परमतत्त्व के अभ्यास में संलग्न है वह; विभाव में जिसकी बुद्धि लगी हुई है, वह प्रवीण नहीं है।

'परमतत्त्व का अभ्यास' वह चारित्र सूचित करता है;

'प्रवीणबुद्धि' वह सम्यग्ज्ञान सूचित करता है;

'शुद्धदृष्टि' वह सम्यग्दर्शन सूचित करती है;

—इसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला पुरुष, विभाव का निषेध करके चिदानन्द स्वभाव के आश्रय से मुक्ति प्राप्त करता है।

अहो! 'जिन' और 'जीव' समान हैं:—

जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहिं कांई;
लक्ष थवाने तेहनो, कह्यां शास्त्र सुखदाई॥

प्रत्येक आत्मा सिद्ध समान परिपूर्ण स्वभावी है.... अज्ञानी भले ही अपने को विभावपर्याय जितना ही माने, किन्तु ज्ञानी तो कहते हैं कि वह व्यवहार से ही विभावपर्यायरूप हुआ है; निश्चय से तो वह सिद्ध जैसा ही है; इसलिये हे जीव! तू शुद्धदृष्टि से अपने आत्मा को ऐसा देख। शुद्धस्वभाव को दृष्टि में लेकर उसकी भावना करने से तू भी कल सिद्ध परमात्मा बन जायेगा।

* * *

'कारणशुद्धपर्याय' की इस लेखमाला में मुख्यतः यह बतलाया है कि जीव के हितकार्य का साक्षात् कारण जीव में स्वयं में ही वर्तमान वर्त रहा है; 'कारण' कहीं अन्यत्र ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता। जीव को पुरुषार्थ द्वारा विशेष कार्य करना है वर्तमान में; तो जिसके आधार से बल लगाना है, वह यदि कारणरूप से वर्तमान में परिपूर्ण न हो तो किसके अवलम्बन से कार्य प्रगट होगा? 'कारणशुद्धपर्याय' ने सम्पूर्ण द्रव्य को वर्तमान में झेल रखा है, वह वर्तमान निकट का कारण है—वह सन्मुख है, इसलिये उसकी मुख्यता और विभावों की गौणता करने से कार्य की सिद्धि होती है।

कार्य की सिद्धि होने के बाद भी उसका कारण साथ ही वर्तता है, ऐसा यह ध्रुवकारण है। चार अधूरे ज्ञान तो पीछे रह जाते हैं—छूट जाते हैं, वहाँ भी केवलज्ञानादि चतुष्टय के साथ कारणशुद्धपर्याय तो पंचमभाव से वर्त ही रही है; सदैव साथ ही साथ रहनेवाली ऐसी कारण शुद्धपर्याय ही नये-नये कार्य का कारण है। देखो, यह सदैव साथ रहनेवाला साथी! संयोग, विभाव तथा अधूरी पर्यायें तो जीव का साथ छोड़ देती हैं, तो फिर जो साथ छोड़ दे—उसका विश्वास क्या? इसलिये अंतर्मुख होकर अखण्ड कारणरूप से सदैव साथ वर्तते हुए ऐसे अपने स्वभाव का ही विश्वास कर... मोक्ष में जाने के लिये उसी का साथ ले। सिद्धपद में भी वह सदैव साथ ही साथ रहेगा।

देखो, यह द्रव्यानुयोग का अति सूक्ष्म विषय। मोक्ष का कारण जो निश्चयरत्नत्रय, उसका

भी मूलकारण यहाँ बतलाया है; मोक्षमार्ग और मोक्ष दोनों उसके आधार से प्रगट होते हैं।

प्रश्नः—आप कारणशुद्धपर्याय की खूब-खूब महिमा करते हैं, किंतु हमारे लिये वह क्या उपयोगी है?

उत्तरः—वह वर्तमान कारणरूप है, इसलिये जिसे वर्तमान कार्य (सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्षकार्य) प्रगट करना हो, उसे वह उपयोगी है; क्योंकि उस कारण का आश्रय करने से कार्य प्रगट हो जाता है। द्रव्य से वह कारणशुद्धपर्याय कहीं पृथक् नहीं है। द्रव्य त्रिकाल ज्यों का त्यों वर्तमान में परिपूर्ण वर्त रहा है। अरे जीव! तू जब देख तब वर्तमान कारणरूप से परिपूर्ण द्रव्य तेरे पास ही है... वह तू ही है... मात्र अपने नेत्रों के प्रमादवश तूने अपने कारण को नहीं देख पाया, इसीलिये तेरा कार्य रुका है—अब तो अंतर में दृष्टि करके इस कारण को देख... इस कारण का स्वीकार करके उसका आश्रय करने से तेरा निर्मलकार्य हो जायेगा। द्रव्य-गुण का वर्तमान वर्तता हुआ **स्व-आकार** वह कारणशुद्धपर्याय है, दूसरे कारणों का आश्रय छोड़कर, इस स्व-आकार कारण के स्वीकार से ही सम्यग्दर्शनादि कार्य होता है।

यह कारणशुद्धपर्याय अनादि-अनंत एकरूप से प्रत्येक जीव को वर्तती है।

(१) जगत में संसारपर्याय तो सामान्यरूप से अनादि-अनंत है; परन्तु उसमें से जो जीव अपना भान करके मोक्षमार्ग तथा मोक्ष प्रगट करे, उसके लिये संसार 'अनादि-सांत' है।

(२) मोक्षपर्याय भी जगत में सामान्यरूप से अनादि अनंत है, परन्तु प्रत्येक जीव की अपेक्षा से जिस जीव ने जब से मोक्ष प्राप्त किया, तभी से उसके लिये मोक्ष 'सादि-अनंत' है।

(३) अब, जो कारणशुद्धपर्याय है, वह तो प्रत्येक जीव को संसार में या मोक्ष में अनादि-अनंत वर्तती है; किन्तु उसकी प्रतीति नई हुई है... जब उसकी प्रतीति हो—ज्ञान हो, तब उसका कार्य (सम्यग्दर्शनादि) प्रगट होता है। जिस प्रकार घर में एक निधान तो पहले से ही पड़ा हो, किन्तु जब उसकी प्रतीति करके उपभोग किया जाये, तब वह काम में आया कहलाता है। उसीप्रकार कारणस्वभावरूप निधान तो आत्मा में अनादि-अनंत है, किन्तु उसका भान करके जब श्रद्धा-ज्ञान ने उसे अपना कारण बनाया, तब उस कारण का कारणपना सफल हुआ। 'अहो! यह कारण तो मुझमें पहले से ही था,'—ऐसी प्रतीति तब हुई जब कार्य हुआ। 'कारण' की प्रतीति स्वयं कारण नहीं है, प्रतीति तो 'कार्य' है। कार्य अर्थात् सम्यग्दर्शनादि। उसे प्रगट करनेवाले को ही उसके कारण का सच्चा स्वरूप तथा महिमा समझ में आती है। वाह, कारण-कार्य की कैसी संधि है!

देखो, यह कारण!

लोग कहते हैं कि आप 'कारण' को मानते हैं या नहीं?—हाँ भाई, हम कारण को मानते हैं; लेकिन हम पूछते हैं कि—सच्चा कारण तो कार्य देने की शक्तिवाला होता है या शक्तिरहित? जिसमें कार्य देने की शक्ति न हो, उसे सच्चा कारण कैसे कहा जा सकता है? निमित्त-कारण और व्यवहारकारण की बात तो दूर रही; उनमें तो कार्य देने की शक्ति है ही नहीं; और निश्चय-मोक्षमार्गरूप जो कारण है, उसमें भी मोक्ष देने की पूर्ण शक्ति नहीं है, अंशतः शक्ति है; इसलिये वह मोक्षमार्ग भी मोक्ष का सच्चा कारण नहीं है। मोक्ष का मूल कारण आत्मा की पंचमभाव परिणति है अर्थात् पंचमभावपरिणति सहित वर्तता हुआ आत्मस्वभाव ही मोक्ष का साक्षात् मूल कारण है; उसी में मोक्ष प्रदान करने की शक्ति है। जिसमें जो कार्य देने की शक्ति हो, उसी को उसका सच्चा कारण कहा जायेगा न! मोक्ष के लिये बाहरी कारण नहीं जुटाना पड़ता; भीतर साक्षात् कारण विद्यमान है, उसका अवलम्बन करने पर बाह्य कारण तो वहाँ स्वयमेव होते ही है।

'कारणशुद्धपर्याय' के वर्णन द्वारा यहाँ जो आत्मा का 'निकटकारणपना' बतलाना है, उसका सामान्य दृष्टान्त इसप्रकार है—जिसप्रकार रेत और लैंडी पीपल दोनों में रसगुण होने पर भी, चौंसठपुटी चरपराहट देने के लिये निकट का कारण लैंडी पीपल में है। उसीप्रकार कार्य प्रगट होने के लिये आत्मा में त्रिकाल सामर्थ्य होने पर भी वर्तमान वर्तता हुआ उसका कारणपना (-जिसका यहाँ कारणशुद्धपर्यायरूप से वर्णन किया है) वह सीधा-निकट का कारण है और यह निकट का कारण समस्त जीवों में वर्त रहा है।—जिस प्रकार निकट के कारण की अपेक्षा से लैंडी पीपल और रेत में भेद किये, उसी प्रकार जीवों में दो भेद नहीं होते कि एक जीव में कारण निकट और दूसरे में नहीं। **यह 'कारण' तो समस्त जीवों को सदा निकट में ही (वर्तमान में ही) है। उसका कारणरूप से स्वीकार करे इतनी ही कार्य प्रगट होने में देर है। है तो निकट... किन्तु अज्ञान के पर्दे के कारण दूर हो गया है!—उस अज्ञान के पर्दे को भेदविज्ञान द्वारा हटा कर सीधे कारण के साथ संबंध करके निर्मल कार्य प्रगट करने की यह बात है।**

देखो, टीकाकार ने अद्भुत बात की है। यह टीकाकार मुनिराज पंचपरमेष्ठी पद में स्थित हैं, इसलिये वे भी 'भगवान' हैं। पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करते हुए उन मुनिराज को भी नमस्कार पहुँच जाता है। वे मुनिराज कहते हैं कि प्रभो! अपने केवलज्ञान का कारण तेरे निकट—तेरे पास ही है.... वह पूजित है, आदरणीय है; उसकी शरण लेने से सर्व मनोरथ सिद्ध हो

जाते हैं।—कौन से मनोरथ ?—तो कहते हैं कि मोक्ष के; मुमुक्षु को मोक्ष के सिवा काहे के मनोरथ होते हैं ?

त्रिकाली द्रव्य-गुण और कारणशुद्धपर्याय का जो स्वरूप कहा, उसकी जो भावना करेगा, उसे सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद तक के शुद्ध कार्य होंगे... और अपने सर्व मनोरथ के स्थानभूत ऐसी परमानन्दस्वरूप मोक्षदशा को वह प्राप्त करेगा—इसप्रकार संतों के आशीर्वाद पूर्वक यह लेखमाला समाप्त होती है।

[—यह लेखमाला पूज्य गुरुदेव के अनेक बार के प्रवचनों के आधार पर बड़ी सावधानी पूर्वक तैयार की है; तथापि यह विषय सूक्ष्म एवं गहन होने से मेरी अल्पबुद्धि के कारण लिखते समय भावों में कहीं दोष रह गया हो तो ज्ञानीजनों से तथा श्रुतदेवी माता से नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।—ब्र. हरिलाल जैन]

❖ कारण-कार्य की साक्षात संधिस्वरूप ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा को नमस्कार हो!

❖ कारण के साथ संधिपूर्वक जो निजकार्य को साध रहे हैं, ऐसे साधक संतों को नमस्कार हो!

❖ निज कार्य के हेतुभूत साक्षात् कारण दर्शानेवाले श्री सद्गुरुदेव को नमस्कार हो!

नूतन वर्ष के आशीर्वाद

इस नूतन वर्ष के प्रारम्भ में सुखपूर्वक तीर्थ का प्रारम्भ करने की बात आई है। लोक में नूतन वर्ष के दिन आशीर्वाद देते हैं कि 'यह नया वर्ष आपके लिये सुखदायी हो.....' यहाँ आचार्यभगवान और ज्ञानी संत नूतन वर्ष के अलौकिक आशीर्वाद प्रदान करते हैं कि 'तुम सुख पूर्वक धर्म का प्रारम्भ करो....' किसप्रकार ?—तो कहते हैं कि निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक, अंतरस्वभाव की आराधन से।

दीपावली प्रवचन

जयवंत वर्ते.....
साक्षात् मोक्षमार्गस्वरूप वीतरागता!

गुरुदेव नूतनवर्ष का उपहार देते हैं।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन महावीर भगवान का मोक्षकल्याणक मनाया गया और वीर संवत् का नूतन वर्ष प्रारम्भ हुआ। नूतन वर्ष के उपहार में पूज्य गुरुदेव ने साक्षात् मोक्षमार्ग का स्वरूप प्रदान किया। पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा में 'स्वस्ति साक्षात् मोक्षमार्ग.....' ऐसा कहकर आचार्य भगवान आशीर्वाद देते हैं कि हे भव्य जीवों! तुम वीतरागतास्वरूप साक्षात् मोक्षमार्ग की आराधना करो.... यही सन्देश पूज्य गुरुदेव ने नूतन वर्ष के मांगलिक में सुनाया - वह यहाँ दिया जा रहा है।

आज के दिन भगवान महावीरस्वामी ने चैतन्य ध्यान द्वारा मोक्ष प्राप्त किया.... और इन्द्रों ने पावापुरी में असंख्य दीपक जलाकर भगवान के मोक्ष का महोत्सव मनाया। चैतन्य की प्रतीति और ज्ञान करके उसमें स्थिर होने पर आत्मा के असंख्य प्रदेश में केवलज्ञान के अनंत दीपक प्रज्वलित हो जाते हैं, वह सच्ची दीपावली है। वह कैसे प्रगट हो ?—यह बात पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा में चल रही है।

- ❖ महावीर भगवान आज मोक्ष को प्राप्त हुए.....
- ❖ गौतम गणधर आज केवलज्ञान को प्राप्त हुए.....
- ❖ सुधर्मस्वामी आज मुख्य आचार्य पद को प्राप्त हुए.....
- ❖ इन्द्रों और नरेन्द्रों ने पावापुरी में आकर भगवान के मोक्ष का तथा गौतमस्वामी के केवलज्ञान का महोत्सव मनाया।

मोक्ष का सच्चा उत्सव तो यद्यपि मोक्षमार्ग की आराधना द्वारा मनाया जाता है; किन्तु जिसके पास जो कुछ होता है, उसी के द्वारा वह मनाते हैं.... सम्यग्दर्शनादि द्वारा मोक्ष को साधते-साधते अभी जिन्हें राग शेष रह गया है, ऐसे रागी जीव शुभराग द्वारा मोक्ष प्राप्त करनेवाले तथा मोक्ष की

साधना करनेवाल जीवों का बहुमान-भक्ति आदि करके उत्सव मनाते हैं; उसमें राग टूटकर जितने अंश में अपनी परिणति वीतरागता की ओर झुकती है, उतना ही लाभ है।

चैतन्यस्वभाव की प्रतीति करके वीतरागता द्वारा मोक्ष की आराधना करना, वह भगवान के मोक्ष का सच्चा उत्सव है। मोक्ष तो भगवान ने प्राप्त किया; फिर उसका उत्सव मनानेवाले को क्या लाभ हुआ ?—तो कहते हैं कि भगवान जैसे शुद्ध रत्नत्रय का जितना भाव अपने आत्मा में प्रगट किया, उतना मोक्ष भाव आया; उसने अपने स्वकालरूप 'दी' को स्वभाव में 'वाली' ने (उन्मुख करके) दीवाली मनाई; भगवान के मोक्ष का सच्चा उत्सव मनाया। इसके अतिरिक्त जो जीव भगवान के मोक्षभाव को न जाने और उसका अंश भी अपने में प्रगट न करे, वह जीव मात्र रागरूप बंध भाव द्वारा मोक्ष का सच्चा उत्सव किस प्रकार मना सकेगा ? मोक्ष के स्वरूप की प्रतीतिपूर्वक उसके प्रति जैसा बहुमान एवं उल्लास ज्ञानी को आयेगा, वैसा अज्ञानी को नहीं आ सकता। —इसप्रकार भगवान के मोक्ष का उत्सव मनानेवाले को भगवान जैसा भाव अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतराग भाव अपने में प्रगट करना चाहिये।

भगवान के मोक्ष का उत्सव कौन मनाता है ?

—कि जो मोक्षार्थी हो वह।

वह मोक्षार्थी जीव किसप्रकार निर्वाण प्राप्त करता है ?

साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी भव्यजीव अत्यंत वीतरागता द्वारा भवसागर को पार करके, शुद्धस्वरूप परम अमृत समुद्र का अवगाहन करके शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।

देखो, आज भगवान के निर्वाण के दिन निर्वाण प्राप्त करने की बात आई है। भगवान का आत्मा मोक्षार्थी होकर चिदानन्दस्वभाव का भान करके उसमें लीनता द्वारा वीतरागता हुआ। —इसप्रकार राग-द्वेष-मोहरूप भवसागर से पार होकर परम आनन्दसागर ऐसे अपने शुद्धस्वरूप में निमग्न होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। निर्वाण का ऐसा ही मार्ग भगवान ने भव्य जीवों को दर्शाया है। हे भव्य जीवो ! वीतरागता ही साक्षात् मोक्षमार्ग है.... उसी के द्वारा भव्यजीव भवसागर से पार होकर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि॥१७२॥

सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य आचार्य भगवान ने इस सूत्र में बतलाया है। भव्य जीव किसप्रकार

भव सागर से पार होते हैं ?—कि वीतरागता द्वारा। बस, वीतरागता ही समस्त शास्त्र का तात्पर्य है, वही शास्त्र का हार्द है। कहीं भी किंचित् राग रखकर भवसागर से पार नहीं हुआ जाता, किन्तु समस्त वस्तुओं के सम्पूर्ण राग को छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर, चैतन्यस्वरूप में लीनता द्वारा ही भवसागर से पार होते हैं।

'विस्तार से बस होओ!' आचार्यदेव कहते हैं कि अधिक क्या कहें ? समस्त तीर्थंकर भगवन्त इस उपाय से ही—वीतरागता द्वारा ही—भवसागर से पार हुए हैं, और उन्होंने अन्य मुमुक्षु जीवों को भी यह वीतरागता का ही उपदेश दिया है। इसप्रकार वीतरागता ही शास्त्र का तात्पर्य है और वही मोक्षमार्ग का सार है। इसलिये,

❖ 'जयवंत वर्ते वीतरागता... कि जो साक्षात् मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्र तात्पर्यभूत है।'

❖ 'स्वस्ति साक्षात्मोक्षमार्गसारत्वेन शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति।'

आचार्यदेव साक्षात् मोक्षमार्ग के प्रति प्रमोद से कहते हैं कि अहो! ऐसा मोक्षमार्ग जयवन्त वर्ते!

'विस्तार से बस होओ... साक्षात् मोक्षमार्ग के साररूप वीतरागता जयवन्त वर्ते!'—जैसा यहाँ कहा है, उसीप्रकार प्रवचनसार में भी पहला अधिकार समाप्त करते हुए आचार्यदेव ने कहा है कि—जयवंत वर्तो स्याद्वाद मुद्रित जैनेन्द्र शब्दब्रह्म;

जयवंत वर्तो वह शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्वोपलब्धि—कि जिसके प्रसाद से, अनादि संसार से बँधी हुई मोहग्रन्थि तुरन्त ही छूट गई; और

जयवंत वर्तो परम वीतरागचारित्रस्वरूप शुद्धोपयोग—कि जिसके प्रसाद से यह आत्मा स्वयमेव धर्म हुआ।

—इसप्रकार वीतरागी संतों ने जगह-जगह वीतरागता का जय-जयकार करके उसी को साक्षात् मोक्षमार्गरूप से प्रसिद्ध किया है तथा उसी को शास्त्र का तात्पर्य कहा है।

समस्त तीर्थंकर भगवन्तों ने इसी रीति से मोक्ष को साधा और इसीप्रकार उसका उपदेश दिया; इसलिये निश्चित होता है कि यही निर्वाण का मार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। आचार्यदेव कहते हैं कि इसप्रकार निर्वाण का मार्ग निश्चित होने के कारण अब दूसरे प्रलाप से बस होओ; मेरी मति व्यवस्थित हुई है। ऐसा मोक्षमार्ग दर्शानेवाले भगवन्तों को नमस्कार हो।

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमोतेसिं॥८२॥ *(प्रवचनसार)*

अहा, इस वीतरागता को ही साक्षात् मोक्षमार्ग के रूप में जयवन्त कहकर, तथा उसी को शास्त्र का तात्पर्य कहकर आचार्यदेव ने अद्भुत बात कही है। साक्षात् मोक्षमार्ग अर्थात् सीधा मोक्षमार्ग, सच्चा मोक्षमार्ग तो वीतरागता ही है, अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रारम्भ से अन्त तक जो वीतरागता है, वही मोक्षमार्ग है; मोक्षमार्ग के रूप में वीतरागता ही जयवन्त वर्तती है, राग का तो मोक्षमार्ग में से क्षय होता जाता है।

देखो, वीतरागता साक्षात् मोक्षमार्ग है; शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है; वीतरागता में स्वभावोन्मुखता है और पर की उपेक्षा है, क्योंकि पर की उपेक्षा करके स्वभावोन्मुख हुए बिना वीतरागता नहीं होती।

वीतरागता को शास्त्र का तात्पर्य कहा उसके अर्थ में यह बात भी आ गई कि शास्त्र में कहीं राग का तात्पर्य नहीं है; क्योंकि शास्त्र में कहीं वीतरागता को और कहीं राग को तात्पर्य कहा जाये—इसप्रकार दो परस्पर विरुद्ध कथन नहीं होते। भले ही कहीं राग को व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा हो या परम्परा से मोक्ष का कारण कहा हो, तथापि उस कथन के समय भी राग, शास्त्र का तात्पर्य नहीं है; शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता ही है। संतों ने सम्पूर्ण शास्त्र में अखण्डरूप से वीतरागी तात्पर्य ही गूँथा है।

देखो, यह नूतन वर्ष का उपहार दिया जा रहा है! वीतरागी मोक्षमार्ग को समझकर उसकी आराधना करना, वह अपूर्व उपहार है। जिसने ऐसे वीतरागी मार्ग की सम्यक्श्रद्धा की, उसके आत्मा में अपूर्व नूतन वर्ष का प्रारम्भ हुआ और उसने संतों से सच्चा उपहार लिया।

हे भव्य जीवो! वीतरागता को ही साक्षात् मोक्षमार्ग जानकर उसकी आराधना करो... वीतरागता कैसे होती है?—तो कहते हैं कि स्वभावोन्मुख होने से वीतरागता होती है। अंतर्स्वभाव में लीन होने से वीतरागत होकर जीव भवसागर से पार होता है और मोक्ष प्राप्त करता है, इसलिये मोक्षेच्छु जीव को-मोक्षाभिलाषी को-कहीं भी राग किंचित् कर्तव्य नहीं है; स्वभाव में लीनता द्वारा वीतरागता ही कर्तव्य है। वह वीतरागता ही साक्षात् मोक्षमार्ग है... वह वीतरागता जयवंत वर्तो!

* * *

आचार्य भगवन्तों की अत्यन्त महिमापूर्वक गुरुदेव कहते हैं कि—वाह! जंगल में बैठे-

बैठे संतों ने अद्‌भुत कार्य किया है! वीतरागी मोक्षमार्ग की जगत के समक्ष खोलकर सत्यमार्ग को प्रकाशित किया है। अहा, ऐसा वीतरागमार्ग! उसकी 'श्रद्धा करने की रीति' भी अलौकिक है। यदि राग के एक सूक्ष्म अंश की भी रुचि रहे, किसी भी राग को हितकर माने तो वह जीव वीतरागमार्ग की श्रद्धा नहीं कर सकता। चैतन्यस्वभाव की ओर उन्मुख होकर आनन्द की धारा में झूलते हुए मुनिवर वेगपूर्वक मोक्षमार्ग में परिणमित हो रहे हैं, तथापि बीच में राग का एक क्षण भी रह जाये तो उतना मोक्ष की ओर का वेग रुकता है; इसलिये साक्षात् वीतरागता ही मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है।

* * *

देखो, यह मोक्ष के मूल मंत्र! इनमें तो साक्षात् वीरागता का ही उपदेश है। अहा! मोक्षाभिलाषी को कहीं भी एवं किंचित् राग नहीं करना चाहिये। राग भवसागर से पार होने का साधन नहीं है; वह तो उदय भाव है और उसका फल संसार है; इसलिये मोक्षाभिलाशी का वह किंचित् भी कर्तव्य नहीं है; साक्षात् वीतरागता ही मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है, क्योंकि उसी के द्वारा भवसागर से पार हुआ जाता है।

* * *

अहा हा! मोक्षाभिलाषी की यह बात तो देखो! कुंदकुंदाचार्यदेव ज्ञान के अगाध समुद्र थे, उनका आत्मा अत्यन्त पवित्र था.. वे चैतन्य के आनन्द में झूलते थे... चैतन्य के आनन्द में झूलते-झूलते राग का किंचित् विकल्प उठने से यह शास्त्र लिखा गया है। उसमें कहते हैं कि—साक्षात् वीतरागतारूप जो मोक्षमार्ग, उसकी प्रभावना के हेतु हम यह कहते हैं... हम मोक्षार्थी हैं... हम राग की इच्छा नहीं रखते। अहा, कितने भद्र! कितने निरभिमानी! कितने पवित्र!! भाई, राग की रुचि नहीं करना। हमारा उत्साह वीतरागी मोक्षमार्ग में ही है; राग में हमारा उत्साह नहीं है, और हे मोक्षार्थी श्रोताओं! तुम भी वीतरागी मोक्षमार्ग के प्रति उत्साहित रहना, बीच में राग आये उसके प्रति उत्साहित न होना।

* * *

शास्त्रों का हृदय खोलकर संत कहते हैं कि परम वीतरागता ही कर्तव्य है, वही साक्षात् मोक्षमार्ग है। अहा! जो जीव पात्र होकर ऐसा वीतराग मार्ग समझता है, उसे समझानेवाले संतों के प्रति कितनी विनय होती है! कितना बहुमान होता है! राग में वर्तते हुए भी जिसे वीतरागी

पंचपरमेष्ठी भगवन्तों के प्रति विनय एवं बहुमान का भाव उल्लसित नहीं होता, उसे तो वीतरागी मार्ग की श्रद्धा भी नहीं होती। वीतरागमार्ग की भावनावाले को, जब तक साक्षात् वीतरागता न हो, तब तक वीतरागी पुरुषों के प्रति (पंचपरमेष्ठी आदि के प्रति) परम भक्ति-विनय-उत्साह-बहुमान का भाव अवश्य आता है; तथापि उसमें जो राग है, वह कहीं तात्पर्य नहीं है; वह मोक्षमार्ग नहीं है; मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव ही है—ऐसा नियम है; और वही मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है; उसी के द्वारा वह भवसागर से पार होकर परमानन्दरूप मोक्षपद को प्राप्त करता है।

वीतरागी मोक्षमार्ग की जय हो।

वीतरागी मोक्षमार्ग के उपासक एवं उपदेशक संतों की जय हो!

महावीर स्वामी के मोक्षधाम में

गुरुदेव का प्रवचन

[पावापुरी-तीर्थधाम की यात्रा के अवसर पर,
पूज्य श्री कानजीस्वामी का भक्तिपूर्ण प्रवचन]

(फाल्गुन शुक्ला २, रविवार)

देखो, इस पावापुरी धाम से भगवान महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया था। देह से पार ज्ञानानन्दतत्त्व का भान तो पहले से था ही, और ऐसे भानसहित जन्म धारण किया था। पश्चात् चारित्रदशा प्रगट की और वैशाख शुक्ला दसवीं के दिन भगवान को केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान के पश्चात् तीस वर्ष तक सहजरूप से बिना इच्छा के विहार करते रहे और दिव्यध्वनि खिरी.... फिर इस पावापुरी में पधारे और अन्तिम देशना के बाद योगनिरोध करके यहाँ से भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया। उस मोक्षस्थान के ठीक ऊपर समश्रेणी में वे इस समय भी सिद्धभगवान के रूप में विराजमान हैं।

भगवान सर्वज्ञ थे, वीतराग थे और हितोपदेशी थे। उन्होंने हितोपदेश में क्या दिया?

—जिससे आत्मा का परमहित हो, ऐसा उपदेश भगवान ने दिया है। भगवान स्वयं तो सर्वज्ञ-वीतराग हुए और अपने आत्मा का परम हित साध लिया; पश्चात जो दिव्यवाणी निकली, उसमें भी ऐसे हित का ही उपदेश आया कि अहो आत्मा! तेरा आत्मा भी एक क्षण में परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरा है। हमने जो अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य की प्राप्ति की, वह आत्मा की अंतरशक्ति से की है। हमारे और तुम्हारे आत्मा के अंतरस्वभाव में कोई अन्तर नहीं है। आत्मा की क्षणिक पर्याय में जो शुभ-अशुभ वृत्तियाँ हैं, वह विकृति है, वह हित का कारण नहीं है; उस शुभ-अशुभ का अभाव करके हमने अपना पूर्ण हित साधन किया है, इसलिये प्रथम ऐसा निर्णय कर कि मैं जो हित प्राप्त करना चाहता हूँ, वह मेरे आत्मा की शक्ति में से ही आयेगा; कहीं बाहर से नहीं।—इसप्रकार स्वभावसन्मुख होने का जो परम हितोपदेश सर्वज्ञ भगवान ने दिया, उसी से उनकी महत्ता है।

आद्य स्तुतिकार स्वामी समन्तभद्र कहते हैं कि—'हे भगवान! आप मोक्षमार्ग के नेता हैं, हितमार्ग के प्रणेता हैं; कर्मरूपी पर्वत का छेदन करनेवाले तथा विश्व के समस्त तत्त्वों के प्रत्यक्ष ज्ञाता हैं। ऐसे गुणों की प्राप्ति के लिये आपको वंदन करता हूँ—ऐसे गुणों द्वारा आत्मा की स्तुति करता हूँ।'

तब मानों भगवान उनसे पूछते हैं कि—'हे भद्र! तुमने स्तुति में इस समवसरण का, देवों के आगमन का, आकाश में गमन का, इस चमर-छत्रादि दिव्य वैभव का स्तवन तो नहीं किया!!'

समन्तभद्रस्वामी भगवान को उत्तर देते हुए कहते हैं कि हे नाथ! क्या यह देवों का आगमन, आकाश में गमन तथा छत्र-चमरादि वैभव के कारण आप मुझे पूज्य हैं? क्या इनके कारण आपकी महानता है??—नहीं-नहीं प्रभो! यह सब तो मायावी इन्द्रजाल वाले भी दिखा सकते हैं। हे नाथ! हम तो आपके गुणों को पहिचान कर उसके द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।

देवागम - नभोयान - चामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान्॥

हे नाथ! यह समवसरण का वैभव, यह देवों का आगमन, यह आकाश में विहार—इनके द्वारा हम आपकी महत्ता नहीं मानते;—ऐसा तो मायावी भी बतला सकते हैं। हे नाथ! हम तो आपके परम हितोपदेश द्वारा आपकी सर्वज्ञता और वीतरागता का परीक्षा द्वारा निर्णय करके उसी से आपकी महत्ता मानते हैं।—

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं, कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

देखो, यह भगवान की स्तुति! जिसप्रकार नदी के प्रवाह में तरंगें उठती हैं; उसीप्रकार ज्ञानी के हृदय में सम्यग्ज्ञान का प्रवाह चलता है; उसी में यह भक्तिरूपी तरंगें उठती हैं। ज्ञानी की स्तुति भी भिन्न प्रकार की होती है। भगवान को पहिचानकर, उनके कथन की परीक्षा करके वे भगवान की स्तुति करते हैं; अकेला पुण्य का ठाठ हो, उसकी महत्ता नहीं है। अरे! ज्ञानी-धर्मात्मा तो ऐसा विचार करते हैं कि इन्द्रपद या चक्रवर्तीपद की प्राप्ति हो, वह भी पुण्य का फल है—राग का फल है; उस वैभव के उपभोग में तो पापवृत्ति है; उसमें कहीं चैतन्य का सुख नहीं है। इन्द्र का या चक्रवर्ती का वैभव पूर्व पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ, वहाँ धर्मी को उसका आदर नहीं है—उसकी रुचि नहीं है। चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का ही आदर है, उसी की मिठास है। भगवान ने आत्मा के ऐसे आनन्दस्वभाव की ओर उन्मुख होने का उपदेश किया है। इस समय तो भगवान वाणी रहित हो गये हैं और सिद्धपद में विराजमान हैं; वहाँ प्रतिक्षण आनन्द की नवीन पर्याय का अनुभव करते हैं।

चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करनेवाले ज्ञानी-संतों को इन्द्रिय विषयों की ओर झुके हुए जीवों के प्रति दयाभाव उत्पन्न होता है। चैतन्यस्वभाव के अनुभव बिना अन्य कोई मोक्ष का साधन नहीं होता। बीच में पूजा-भक्ति की शुभवृत्ति भले आये, किन्तु वह कहीं मोक्ष का साधन नहीं होती। शुभाशुभ वृत्तियाँ उस स्वभाव के कोष में से नहीं आतीं; स्वभाव में तो ज्ञान-आनन्द का भंडार है। ऐसे आनन्दस्वभाव का जिसे भान हुआ है, उसे चक्रवर्ती और इन्द्रों पर भी दया आती है। चक्रवर्तीपद, इन्द्रपद आदि महान पदवियों का बंध तो सम्यग्दर्शन की भूमिका में ही होता है, किन्तु धर्मी को उन पदों की प्रीति नहीं है; चैतन्य की प्रीति के समक्ष जगत के किसी वैभव की प्रीति वह नहीं रखता। ऐसे सम्यग्ज्ञान के बिना जीव ने राग की रुचि से अनन्तबार मुनिव्रत का पालन किया किन्तु उसका किंचित् हित नहीं हुआ।

'मुनिव्रतधार अनंतबार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'

जब भगवान यहाँ से मोक्ष पधारे, तब स्वर्ग से इन्द्रों ने आकर मोक्षकल्याणक मनाया था। इस समय भी वे ही इन्द्र स्वर्ग में विराज रहे हैं और वही यह भूमि है। भगवान यहाँ से मोक्ष पधारे; गौतमस्वामी ने यहाँ केवलज्ञान प्राप्त किया और यहाँ से तेरह मील दूर गुणावा से मोक्ष में गये। जिसे ऐसे केवलज्ञान और मोक्षपद की प्रीति है, वह बारम्बार उनका स्मरण करता है, और इसप्रकार अपने अंतर की चैतन्यऋद्धि का स्मरण करके उसकी भावना भाता है। सम्यग्दृष्टि कैसा होता

है ?—तो कहते हैं कि—

'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसे घट में प्रगट सदा,
अंतर की लक्ष्मी सों अजाची लक्षपति है;
दास भगवन्त के उदस रहें जगत् सों,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।'

सम्यक्त्वी धर्मात्मा जगत से उदास हैं; अंतर की चैतन्यऋद्धि का उन्हें भान है और प्रतिक्षण पर्याय में ज्ञान-आनंद की ऋद्धि-वृद्धि होती जाती है; जगत से उन्हें सुख की आशा नहीं है, इसलिये जगत से उदास हैं और भगवान के दास हैं। उन्हें भान है कि हमारा सुख हमारे स्वभाव में है।—इसप्रकार अंतर की लक्ष्मी से सम्यक्त्वी जीव सदैव सुखी है।

सीताजी की अग्निपरीक्षा के पश्चात् जब रामचन्द्रजी उनसे अयोध्या चलकर राजभवन में रहने का आग्रह करते हैं, तब सीताजी वैराग्यपूर्वक कहती हैं कि—अरे! इस संसार का स्वरूप हमने देख लिया है। वह पटरानी पद हमें नहीं चाहिये। हम तो अब अर्जिका बनकर चैतन्यानन्द की साधना करेंगे। देखो, सम्यक्त्वी को पहले से ही आत्मा के आनन्द का भान है और राजपद को तुच्छ समझा है। सीताजी कहती हैं कि—अब तो हम अपने चैतन्य की निर्मल परिणति को पटरानी पद पर स्थापित करेंगे, यह बाहरी पटरानी पद अब हमें नहीं चाहिये। उसमें कहीं स्वप्न में भी सुख नहीं है। ज्ञानियों को जगत के किसी पदार्थ में सुख भासित नहीं होता; इन्द्रपद, चक्रवर्तीपद या पद्मिनी स्त्री में कहीं भी सुख नहीं है; एक चैतन्यपद में ही सुख है। अहा, चैतन्य के अनन्त सुखमय ऐसा मोक्षधाम भगवान ने यहाँ से प्राप्त किया; उसी की सबको भावना करनेयोग्य है—

पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो.....
सादि-अनंत अनंत समाधिसुखमाँ,
अनंत दर्शन ज्ञान अनंतसहित जो।
अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे ?

मंगल-सुप्रभात

नूतनवर्ष के सुप्रभात में मंगल प्रवचन करते हुए गुरुदेव ने कहा था ''**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं....**' अर्थात् सर्वज्ञ भगवान ने अपने ज्ञान में जीव को सदैव उपयोगलक्षणवान देखा है। जीव तो त्रिकाल उपयोगस्वरूप है। त्रिकाल उपयोगस्वरूपी आत्मा स्वयं ही मांगलिक है, और उसकी श्रद्धा, ज्ञान, लीनता करके केवलज्ञान प्रगट करना, सो मंगल सुप्रभात है।''

जीव का स्वभाव त्रिकाल उपयोगस्वरूप है; क्षणिक पुण्य-पाप, वह उसका स्वभाव नहीं है; त्रिकाल उपयोगस्वरूप में क्षणिक विभावों का सदा अभाव है। ऐसे मंगलस्वरूप—उपयोगस्वभावरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें लीन होने से अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनन्द और अनंत वीर्यरूप जो चतुष्ट प्रगट होते हैं, वह मंगल सुप्रभात है। 'मेरा आत्मा त्रिकाल उपयोगस्वभावरूप है'—इसप्रकार राग के अवलम्बन से रहित अंतर्मुखश्रद्धा करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह भी सुप्रभात है, सम्यग्ज्ञान प्रगट करना भी सुप्रभात है और अंतर में लीन होकर सम्यक्चारित्र प्रगट करना भी सुप्रभात है; तथा उसके फलस्वरूप जो केवलज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हुए, वह तो महान सुप्रभात है। आत्मा में ऐसे सुप्रभात का उदय हुआ सो हुआ... फिर कभी वह अस्त नहीं होता।

देखो, आज के सुप्रभात-मांगलिक में त्रिकाल उपयोगस्वरूप आत्मा की महामंगल बात आई है। सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा को त्रिकाल उपयोगस्वरूप देखा है। अहा! 'त्रि... काल.. उ.. प..योग.. स्व.. रू..प'—ऐसा लक्ष में लेते ही राग से भेदज्ञान हो जाता है। त्रिकाल उपयोगस्वरूप आत्मा, वह त्रिकाल मंगलस्वरूप है; उसकी श्रद्धा-ज्ञान करने से वर्तमानदशा में भी मंगलपना प्रगट होता है। इसलिये उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना, वह अपूर्व मंगल है। अहा! जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आराधना मंगलरूप है, वहाँ उसके फलरूप केवलज्ञान केवलज्ञान पूर्ण मंगल हो, उसमें क्या आश्चर्य!! और जिसमें से वह केवलज्ञान आता है, ऐसे त्रिकाल मंगलस्वरूप आत्मा की महिमा का तो कहना ही क्या!

षट्खण्डागम में श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं कि—**अरिहंतादि का अनादि अनंत आत्मा मंगलरूप है। अहा! वीरसेनस्वामी वीतरागी संत और ज्ञान के अगाध समुद्र थे, वे कहते हैं कि**

जिस आत्मा को केवलज्ञान प्राप्त करना है, वह त्रिकाल मंगल है, तथा जो आत्मा तीर्थंकर होनेवाला है, वह भी अनादि अनंत मंगल है। (गुरुदेव ने प्रमोद पूर्वक जब यह अनादि-अनंत मंगल की बात कही, तब सभा में हर्षनाद छा गया था।) तीर्थंकरों का आत्मा तो केवलज्ञानादि से मंगलरूप है और तीर्थंकर प्रकृति से उत्पन्न हुआ उनका औदयिकभाव भी मंगलरूप है।

जीव को द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता से अनादि अनंत मंगलरूप कहा; वहाँ शिष्य शंका करता है कि—हे प्रभो! इसप्रकार जीव को अनादि-अनंत मंगल कहने से तो मिथ्यात्वदशा में भी जीव को मंगलपने की प्राप्ति हो जायेगी! उसके समाधान में आचार्यदेव कहते हैं कि—इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि ऐसा प्रसंग तो हमें इष्ट ही है... अर्थात् मिथ्यात्वदशा के समय भी जीव के स्वभाव का मंगलपना सिद्ध हो, यह तो हमें इष्ट ही है, परन्तु ऐसा मानने से कहीं मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद आदि को मंगलपना सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि उनमें जीवत्व नहीं है अर्थात् वे जीव का स्वभाव नहीं हैं; मंगल तो जीव ही है, और वह जीव केवलज्ञानादि अनंत धर्मात्मक है। (देखो, श्री षट्खण्डागम पुस्तक १, पृष्ठ २८, ३६ आदि।)

देखो, यह अनादि अनंत मंगल! ऐसे अनादि अनंत मंगल स्वरूप आत्मा को श्रद्धा में लेने से पर्याय में भी सम्यग्दर्शनादि मंगल भाव प्रगट होते हैं और केवलज्ञान होने पर आत्मा पूर्ण मंगलरूप हो जाता है। 'अहिरंत मंगलं, सिद्ध मंगलं'..... यह तो उनकी बात है जो पर्याय से भी मंगलरूप हो गये हैं; और आत्मा का स्वभाव त्रिकाल मंगलरूप है; उस त्रिकाल मंगल के स्वीकार से (अर्थात् स्वभावोन्मुखता से) सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की मंगल पर्यायों की पंक्ति प्रारम्भ हो जाती है। नूतन वर्ष के मांगलिक में यह मंगल की सरस बात आई है!

समयसार गाथा १७, १८ में कहते हैं कि—जो जीव मोक्षार्थी है, उसे पुरुषार्थपूर्वक जीवराजा को—चैतन्यराजा को—श्रद्धा-ज्ञान में लेकर उसी का अनुसरण करना चाहिये... सर्व उद्यम से उसका सेवन करना चाहिये... इसप्रकार उसके सेवन से केवलज्ञानरूपी मंगल सुप्रभात उदित हो जाता है... साधक के आत्मा में भी सम्यग्दर्शनादि मंगलसुप्रभात का उदय हो गया है।

अहा, तीर्थंकर होनेवाले आत्मा को या अरहंत होनेवाले आत्मा को अनादि-अनंत मंगल कहा है; अरे! तीर्थंकर प्रकृति के उदयरूप उदयभाव को भी मंगल कहा है, तो फिर आत्मा की प्राप्ति के अपूर्वभाव की तो बात ही क्या!! वह तो साक्षात् भावमंगल है। नित्यमंगलरूप स्वभाव के संस्कार से पर्याय भी मंगलरूप परिणमित हो जाती है। जहाँ पर्याय अन्तर्स्वभावोन्मुख हुई, वहाँ

उसमें स्वभाव के संस्कार पड़ गये अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन हुआ, वह अपूर्व मंगल है, वह सच्चा तीर्थ है।

यहाँ (पंचास्तिकाय गाथा १७२ में) भी ऐसे मंगल तीर्थ का प्रारम्भ करनेवाले जीव की बात आई है... धर्मात्मा जीव निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करता है।

देखो, इस नूतन वर्ष के प्रारम्भ में सुखपूर्वक तीर्थ का प्रारम्भ करने की बात आई है। लोक में नूतन वर्ष के दिन आशीर्वाद देते हैं कि—'यह नयावर्ष आपके लिये सुखदायी हो'..... यहाँ आचार्य भगवान और ज्ञानी संत नूतनवर्ष के अलौकिक आशीर्वाद प्रदान करते हैं कि—'तुम सुखपूर्वक तीर्थ का प्रारम्भ करो।'—किसप्रकार?—तो कहते है कि निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक अंतरस्वभाव की आराधना से।

भव्यजीवों को सुखपूर्वक मंगलतीर्थ का प्रारम्भ करानेवाले
सर्व संत-भगवन्तों को नमस्कार हो!

★

दीपावली का मंगल-सन्देश

[आत्मा की आराधना का दिवस]

दीपावली के मंगल-प्रवचन में आत्मा की आराधना का उत्साह दिलाते हुए गुरुदेव ने कहा था कि—

आज भगवान महावीर परमात्मा के आत्मा की अनादि-सांत संसार स्थिति पूर्ण होकर सादि-अनंत सिद्धदशा प्रारम्भ हुई; उस महान मंगलदशा का आज दिवस है। भगवान ने मोक्ष के कारणरूप आत्मानुभव तो अनेक भव पहले ही प्रगट कर लिया था... फिर उसमें आगे बढ़ते-बढ़ते आज प्रातःकाल मोक्षदशा प्रगट की। उनके सम्मान में लोगों ने हजारों दीपमालाओं से निर्वाण-महोत्सव मनाया। उसी निर्वाण का आज नूतनवर्ष है; आज से संवत् २४८६ प्रारम्भ हो रहा है।

भगवान को मोक्ष होते ही गौतम गणधर ने भी केवलज्ञान प्राप्त किया, इसलिये उन्हें अरिहन्तपद प्रगट हुआ। भगवान महावीर का सिद्धपद और गौतमस्वामी का अरिहन्तपद—उनका

आज महा मंगल दिवस है। इसलिये वास्तव में, उन भगवन्तों ने किसप्रकार मोक्ष की आराधना की, उसे समझकर वैसी ही आराधना प्रगट करने का यह दिवस है। अंतर में आत्मोन्मुख होकर जिसने आराधना प्रगट की, उसने रत्नत्रयरूप दीपकों से मोक्ष का महोत्सव मनाया... उसी ने सच्ची दीपावली मनाई... उसके आत्मा में आनन्दमय सुप्रभात उदित हुआ... वही मंगल है और प्रत्येक जीव को उसी की भावना तथा आराधना करनेयोग्य है।

[—वीर सं० २४८६, कार्तिक कृष्णा ३० (दीपावली) के प्रवचन से]

पावापुरी मुक्तिधाम की यात्रा के
संक्षिप्त संस्मरण

पूज्य गुरुदेव संघसहित फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा के सायंकाल पावापुरी पधारे और तुरन्त धर्मशाला में विराजमान खड्गासन महावीर भगवान की अद्भुत मुद्रा के दर्शन से प्रसन्न हुए... दूसरे दिन-फाल्गुन शुक्ला दूज के प्रातःकाल पद्मसरोवर के मन्दिर में प्रभु के निर्वाणधाम की यात्रा की... गुरुदेव के साथ बेनश्री-बेन तथा संघ के एक हजार जितने यात्री भक्तिगान करते-करते जब मन्दिर में पहुँचे... वीरनन्दन ने भक्तिभावपूर्वक वीर प्रभु के दर्शन किये और अर्घ्य चढ़ाया।

जल मन्दिर भक्तजनों से खचाखच भर गया.... निर्वाणधाम को निरखकर गुरुदेव बोले, भगवान महावीर ने यहाँ से मोक्ष प्राप्त किया है... यहाँ से ठीक ऊपर भगवान विराजमान हैं। इतना कहकर गुरुदेव ने निम्नोक्त भक्ति-स्तवन की धुन बुलवाई—

आजे वीर प्रभुजी निर्वाण पद पामीयारे.....
श्री गौतम गणधरजी पाम्या केवलज्ञान.....
सुरनर आवे निर्वाणकल्याणकने उजववा रे....

अहा, जलमन्दिर में भक्ति के समय भक्तजन भगवान को देखने के लिये उत्कंठित हो रहे हैं.... और टकटकी लगाकर देखते हुए मानों गुरुदेव से पूछ रहे हैं कि हे गुरुदेव! महावीर प्रभु यहाँ से किसप्रकार-किस मार्ग से-मुक्ति पधारे ?—वह हमें समझाइये!'

वीर भगवान के पदचिह्नों पर-मुक्तिमार्ग पर चलते-चलते गुरुदेव भक्तों को बतला रहे हैं—

त्रीस वर्षे तप आदर्यां, लीधां केवलज्ञान;
अगणित भव्य उगारीने, पाम्या पद निर्वाण।

भगवान ने तीस वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त किया; फिर अनेक भव्य जीवों का उद्धार करके यहाँ से मोक्षधाम में पहुँचे.... चलो, हम भी शीघ्र उस मार्ग का अनुसरण करें....

भावभीने चित्त से गुरुदेव कहते हैं कि—हे भगवान! इन बालकों को केवलज्ञान के विरह में डालकर आप मोक्ष चले गये.... किन्तु हम आपके बालक.... आपके शासन को शोभायमान करते-करते हम भी आपके पदचिह्नों पर चले आ रहे हैं।

जल मन्दिर में गुरुदेव की भक्ति समाप्त होने पर पूज्य बेनश्री-बेन ने भी निर्वाणमहोत्सव सम्बन्धी उल्लास पूर्ण भक्ति कराई थी।

भगवान के मुक्तिधाम में गुरुदेव का चित्त भक्ति के रंग से सराबोर हो गया था... वे पुनः पुनः इसप्रकार भक्तिगान कर रहे थे मानों भक्तिरूपी डोर के द्वारा भगवान के शासन को झुला रहे हों। वे गा रहे थे—

वीर प्रभुजी मोक्ष पधार्या.... गौतम केवलज्ञान रे....
वीरजीनुं शासन झूले रे.....
मोंघो मारग ज्यां मुक्तितणो.... त्यां जीवोनां जूथ उभराय रे....
वीरजीनूं शासन झूले रे....

भक्ति के पश्चात् वेदी के निकट जाकर गुरुदेव ने वीर भगवान के पुनीत चरणों का अभिषेक किया और फिर बाहर आकर भक्तों से कहा कि—'आज मैंने भगवान के चरण का अभिषेक किया।' यह सुनकर भक्त मंडली ने हर्षपूर्वक जय ध्वनि की.... और फिर भगवान की पूजा प्रारंभ हुई.... गुरुदेव भी जल-चंदनादि से पूजन कर रहे थे.... फल पूजा में '**मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।**' आने पर गुरुदेव ने श्रीफल चढ़ाया।

इसप्रकार यात्रासंघ ने अत्यन्त भावपूर्वक पावापुरी के जल मन्दिर में गुरुदेव सहित भक्ति-पूजा की.... और फिर 'हे वीर तुम्हारे द्वारे पर.....' इत्यादि धुनें गाते-गाते धर्मशाला में लौटे..... जहाँ वीरप्रभु के मुक्तिधाम में गुरुदेव ने प्रवचन द्वारा मुक्तिमार्ग दर्शाया.....।

[पावापुरी का प्रवचन इसी अंक में देखिये।]

मार्ग का फल

केवलज्ञान-सूर्य से जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं

(नियमसार गाथा १५९-६० के प्रवचन से)

नियमसार में मोक्ष के मार्गरूप शुद्धरत्नत्रय का और उस मार्ग के फलरूप केवलज्ञानादि शुद्धोपयोग का वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मार्ग, उसकी आराधना द्वारा मार्ग के फल को प्राप्त आत्मा कैसा है?—कि केवलज्ञान मूर्ति वह आत्मा समस्त विश्व को साक्षात जानता है। चमकता हुआ चैतन्यसूर्य जहाँ उदित हुआ और कर्मरूपी समस्त बादल बिखर गये, वहाँ वह चैतन्यसूर्य किसे नहीं प्रकाशित करेगा?—किसे नहीं जानेगा? सचमुच वह केवलज्ञान अपने दिव्य सामर्थ्य द्वारा तीनलोक-तीनकालवर्ती समस्त पदार्थों को जान लेता है। अहो! ऐसे चैतन्यसूर्य का उदय जगत के जीवों को ज्ञान-नेत्र खोलने का कारण है। जिसप्रकार सूर्य का उदय होने पर जगत के जीवों की निद्रा दूर होती है और नेत्र खुल जाते हैं; उसीप्रकार केवलज्ञान सूर्य का उदय जगत के जीवों की निद्रा दूर करके ज्ञाननेत्र खोलने का कारण है। जो जीव केवलज्ञान को लक्ष में लेकर उसका निर्णय करे, उसे ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता होकर सम्यग्ज्ञान चक्षु खुले बिना नहीं रहेंगे।

स्वभाव-आश्रित जो सम्यक् मार्ग, उसकी आराधना करनेवाले को उसके फल की शंका नहीं होती। केवलज्ञान के सामर्थ्य में जिसे शंका है, उसे मार्ग के फल की शंका है, इसलिये वास्तव में उसे मार्ग की भी शंका है;—मार्ग की आराधना उसे प्रगट ही नहीं हुई है। जगत में मार्ग के

फलरूप जगमगाता हुआ चैतन्यसूर्य उदित हुआ है; किंतु जिसके ज्ञानचक्षु बन्द हैं, वह उसे नहीं देखता—उसकी श्रद्धा नहीं करता। स्वसन्मुख होकर ज्ञानचक्षु खोले बिना केवलज्ञान की श्रद्धा नहीं होती।

केवलज्ञान जगत के पदार्थों के पार को प्राप्त है—ऐसा जो नहीं मानता, वह जीव केवलज्ञान के पार को प्राप्त नहीं है अर्थात् केवलज्ञान की उसे श्रद्धा नहीं है।

अनादि पदार्थ के पार को भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया है अर्थात् उस केवलज्ञान ने अनादि पदार्थ को अनादिरूप से यथावत् जान लिया है। 'अनादि पदार्थ को यदि ज्ञान जान ले तो उस पदार्थ का अनादिपना नहीं रहता'—ऐसी कोई शंका करे तो कहते हैं कि भाई! ऐसा नहीं है। ज्ञेयों की अपेक्षा केवलज्ञान का सामर्थ्य अचिंत्य है, उसकी तुझे खबर नहीं है। यदि अनादि पदार्थ को अनादिस्वरूप से केवलज्ञान न जान ले तो उस ज्ञान की सर्वज्ञता कहाँ रही? इसलिये श्रद्धा कर कि केवलज्ञान तीन लोक और तीन काल को जानता है। केवलज्ञानभानु ऐसे जिनदेव जयवंत हैं।

हे जीव! अपने ज्ञान में सर्वज्ञ को स्वीकार करते ही, तुझे अपने आत्मा के अचिंत्य सामर्थ्य की प्रतीति होगी। अहा! सर्वज्ञता को प्राप्त केवली भगवन्तों को सर्वइष्ट की प्राप्ति हुई है और सर्व अनिष्ट का नाश हुआ है। पूर्ण ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति ही मुमुक्षु का इष्ट है। आत्मा के ज्ञान-आनन्द के अतिरिक्त मुमुक्षु को दूसरा क्या इष्ट होगा? 'जगत इष्ट नहिं आत्मथी'—मुमुक्षु को ज्ञानानन्दस्वरूप की आराधना से केवली भगवन्तों को ऐसे इष्ट की परिपूर्ण प्राप्ति हुई है; उन्हें पहिचानने की यह बात है; क्योंकि—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु-जादि तस्स लयं॥

(प्रवचनसार, गाथा ८०)

अहा! केवलज्ञानसूर्य के निमित्त से जगत के जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं; उसे लक्ष में लेकर प्रतीति करनेवाले जीवों को सम्यग्ज्ञाननेत्रों की प्राप्ति होती है। और सम्यग्ज्ञानरूपी नौका द्वारा वे जीव भवसागर को पार कर लेते हैं।

केवलज्ञानरूपी मार्ग का जो फल, उसे प्रतीति में लेकर साधकजीव कहता है कि—

हे जिननाथ! सद्ज्ञानरूपी नौका में आरोहण करके, भवसागर से पार होकर तू शीघ्रता से शाश्वतपुरी में पहुँच गया.... अब मैं भी तेरे ही मार्ग से उस शाश्वतपुरी में आ रहा हूँ। अपने हृदय में

सर्वज्ञता का अचिंत्य सामर्थ्य लेकर, ज्ञानस्वभावोन्मुख होकर मैं भी तेरे मार्ग पर चला आ रहा हूँ; क्योंकि इसलोक में उत्तम पुरुषों को उस मार्ग के अतिरिक्त अन्य क्या शरणभूत है ?

देखो, यह सर्वज्ञ की श्रद्धा करनेवाले जीव की निःशंकता की झनकार!

सर्वज्ञ की श्रद्धा सर्वज्ञस्वभाव की आराधना का कारण है, वह भव का कारण नहीं है। सर्वज्ञ को यथार्थरूप में जाने और अनन्तभव में भटकने की शंका रहे, ऐसा नहीं हो सकता। सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाला तो चैतन्यस्वभावोन्मुख होकर मोक्ष का आराधक हो जाता है; यानी मार्गफल का निर्णय करनेवाला स्वयं भी उस मार्ग में लग जाता है;—इसप्रकार मार्ग और मार्ग के फल की संधि है।

उपदेशामृत

(१) प्रथम जीव को ऐसी अभिरुचि जागृत होना चाहिये तथा आत्मा की धुन लगना चाहिये कि अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन किये बिना इस जन्म-मरण से छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिये सर्व उद्यम से सम्यग्दर्शन प्रगट करना योग्य है।

(२) जिसे अंतर में आत्मा के सम्यग्दर्शन की सच्ची अभिलाषा जागृत हो, वह अंतर में उसका मार्ग ढूँढ़ता है। वह जीव बाह्य संयोगों में अथवा विकल्पों में सुखबुद्धि नहीं करता, इसलिये उसमें आत्मा को नहीं बाँधता किन्तु उससे पृथक्-पृथक् ही रहकर बारम्बार ज्ञानानन्दस्वभाव की ओर झुकता रहता है।

(३) राग से पार चैतन्यस्वभाव का अनुभव करने पर ही मेरा भवभ्रमण से छुटकारा हो सकता है—ऐसा लक्ष में लेकर, किसी भी प्रकार सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्ध आत्मा का अनुभव करने की जिसे रुचि और अभिलाषा जागृत हुई है, ऐसा जिज्ञासु शिष्य विनयपूर्वक श्रीगुरु से पूछता है कि प्रभो! आत्मा और रागादि का भिन्न-भिन्न अनुभव कैसे करें ?

(४) श्रीगुरु अनुग्रहपूर्वक उसे समझाते हैं कि हे भव्य! शुभाशुभवृत्तियाँ तो अपवित्र हैं

और चैतन्यस्वभाव पवित्र है; शुभाशुभ वृत्तियों का वेदन आकुलतामय है—दुःखरूप है, और चैतन्यस्वभाव का वेदन तो शांत-आनन्दमय है;—इसप्रकार स्वादभेद से दोनों को भिन्न जानते ही तेरा ज्ञान, राग से छूटकर अंतरस्वभावोन्मुख हो जायेगा और तुझे राग से भिन्न चैतन्यस्वभाव का अपूर्व अनुभव होगा।

(५) देखो, यह भेदज्ञान!..... जिससे संसार छूटता है और मुक्ति होती है। एक क्षण का भेदज्ञान अनंत संसार का नाश करके अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त कराता है। अहा, भेदज्ञान की महिमा जीव को अनादिकाल से भासित नहीं हुई और बाह्य क्रिया तथा बाह्य भावों की महिमा स्वीकार की है। जिसकी महिमा माने, उससे विमुख क्यों होगा? और चैतन्य की महिमा जाने बिना उसमें अंतर्मुख क्यों होगा?

(६) अरे जीव! एकबार ऐसा निर्णय तो कर कि अपने आत्मा में अंतर्मुख होना ही मुझे सुख का कारण है तथा बहिर्मुखवृत्ति मुझे दुःख का कारण है। अहा! मैं तो ज्ञायक हूँ, मेरा आत्मा ही मेरे सुख का कारण है—ऐसा निर्णय करके अंतर्मुख होना ही बंधन से छूटने का उपाय है।

(७) शांत होकर अंतर्मुख लक्ष करे तो समझ में आये कि इन रागादि की वृत्तियों में शांति नहीं है किंतु आकुलता है, और चैतन्यस्वभाव शांत-अनाकुल स्वाद से भरपूर है, क्योंकि उसकी निकटता में भी शांति का अनुभव होता है और उसमें उन्मुख होने से शांत-अनाकुल स्वाद का वेदन होता है।—इसप्रकार स्वाद के भेद से अपने को आत्मा और राग की भिन्नता का निर्णय होता है।

(८) आत्मा और राग—इन दोनों के स्वाद को जहाँ अपने वेदन से भिन्न जाना, वहाँ ज्ञान राग के स्वाद में नहीं अटकता किन्तु अंतर्मुख होकर चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है। इसप्रकार भेदज्ञान होते ही आत्मा, संसार से निवृत्त होता हुआ मोक्ष की ओर परिणमित हो जाता है।

(९) सम्यग्ज्ञान के अतिरिक्त यह जीव अन्य सब कुछ अनंतबार कर चुका है, किन्तु मुक्ति का मार्ग उसके हाथ नहीं आया..... क्योंकि राग में मुक्ति का मार्ग नहीं है।

(१०) आचार्य भगवान कहते हैं कि प्रभो! तेरी मुक्ति का मार्ग तेरे आत्मा में से प्रारम्भ होता है, बाह्य में तुझे मुक्ति का मार्ग नहीं मिल सकता; शुभाशुभ संकल्प-विकल्प से भी मुक्ति का मार्ग नहीं मिलेगा, इसलिये स्वानुभव प्रत्यक्ष से स्वभाव को लक्ष में लेकर उसके सन्मुख हो; मुक्ति का मार्ग अंतर्मुख है।

शुद्धोपयोगी जीव की परिणति

जो जीव शुद्धोपयोगी है, अंतर्मुख होकर आत्मा का अवलोकन करनेवाला है, उसकी परिणति का वर्णन करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि वह जीव मध्यस्थ को भाकर अर्थात् रागद्वेष रहित होकर, समस्त कर्मों से अत्यन्त भिन्न तथा निर्मल गुणों के धाम ऐसे आतमराम को ध्याता है। उसकी यह निर्विकार परिणति समस्त कर्मों को छेद डालने में समर्थ है।

ऐसी परिणतिवाला शुद्धोपयोगी जीव कैसा है?—'राजहंस' है.... सम्यग्दर्शनादि अनेक गुणरूपी खिले हुए कमलों से शोभायमान जो चैतन्यसरोवर, उसमें राजहंस केलि करता है.... कर्मकलंकरूपी कादव को वह राजहंस ग्रहण नहीं करता।

अहा! जहाँ परिणति अंतर्मग्न हुई और शुद्धभावरूपी अमृत का समुद्र उमड़ा, वहाँ पाप कलंक कैसे कर सकता है? शुद्धोपयोगी राजहंस को अमृतानंद का जो समुद्र उमड़ा है, वह समस्त कर्मकलंक को धो डालता है तथा उसकी प्रगट हुई ज्ञानज्योति का प्रकाश समस्त अंधकार को दूर कर देता है।

देखो, यह शुद्धोपयोगी जीव की दशा का वर्णन! एक ओर आनन्द का सागर उमड़ रहा है.... एक ओर ज्ञानसूर्य जगमगा रहा है... तो एक ओर चैतन्यसरोवर में सम्यग्दर्शनादि के कमल खिल उठे हैं!—यह सब धर्मात्मा की परिणति में आ जाता है। उनकी परिणति शांत-शांत हो गई है!—ऐसी परिणति, वह मुमुक्षु का मार्ग है... मुमुक्षु जीव शुद्धोपयोग द्वारा ऐसी परिणति कर-करके ही मोक्ष में गये हैं... और.... मुनिराज कहते हैं कि मैं भी उसी मुमुक्षु-मार्ग पर चलता हूँ। सचमुच मुनि के अंतर में ऐसी परिणति वर्त रही है... ऐसी परिणति द्वारा वे मोक्ष के मार्ग में चले जा रहे हैं।

अरे, यह शरीर तो भव की मूर्ति है, अस्थिर है; यह पुद्गलमय शरीर मेरा नहीं है.... मैं तो ज्ञानशरीरी हूँ, ज्ञान ही मेरा शरीर है, वह स्थिर है। इसलिये मैं पुद्गलमय शरीर का आश्रय छोड़कर, मोक्ष साधने के लिये अपने अपने ज्ञानशरीर का आश्रय लेता हूँ।—इसप्रकार धर्मी जीव अपनी परिणति को ज्ञानस्वभाव में एकाग्र करके आतमराम को ध्याता है..... और परमानन्द का अनुभव करते-करते मोक्ष को साधकर अशरीरी होता है।

—इसप्रकार अंतर्मुख होकर, शुभ-अशुभ से रहित ऐसे शुद्ध चैतन्य की भावना, वह

अनादिकालीन भवरोग को मिटाने की उत्तम औषधि है। 'औषधि विचार... ध्यान।'—शुद्ध चैतन्यस्वरूप को विचार-मनन द्वारा जानकर, उसके ध्यान में एकाग्र होने पर अनादिकालीन भवरोग क्षणमात्र में दूर हो जाता है। चैतन्य के ध्यानरूपी यह अमोध औषधि कभी निष्फल नहीं जाती; इसलिये श्रीगुरु के वचनों को प्राप्त करके, हे जीव! तू ऐसी शुद्ध परिणतिवान हो... शुद्धपरिणतिवान होकर चैतन्य के ध्यान द्वारा शुद्धोपयोगी बन! तेरे शुद्धोपयोग में परम चैतन्यतत्त्व आनन्दसहित स्फुरायमान होगा... और वह तुझे मुक्ति देगा। मुनियों के मन में भी इस शुद्ध तत्त्व का निवास है... विषय सुख में रत जीव भले ही इस परम सुख समुद्र को न देखें, किन्तु धर्मात्मा तो विषयों से विमुख होकर, अंतरपरिणति द्वारा परम सुख समुद्र में मग्न होते हैं। जगत के किसी भी विषय में जिस सुख का अंश भी नहीं है, ऐसे परमसुख का अनुभव शुद्धोपयोगी जीव चैतन्य के ध्यान में करते हैं.... परमसुख के साक्षात् समुद्र में उनकी परिणति लीन होती है।

अहा, देखो तो सही.... यह धर्मात्मा की परिणति! इसे जान ले तो भी अंतर में भेदज्ञान हो सकता है। ऐसी शुद्ध परिणतिवान आत्मा जयवंत वर्तता है.... उसे मैं प्रतिदिन भाता हूँ।

(-नियमसार गाथा १११ तथा ऊपर के ९ श्लोकों के प्रवचन से)

आत्मा झंकृत हो उठता है

आत्मा ही आनन्द का धाम है; उसमें अंतर्मुख होने से ही सुख है।—ऐसी वाणी की झंकार जहाँ कानों में पड़े, वहाँ आत्मार्थी जीव का आत्मा झंकृत हो उठता है कि वाह! यह भवरहित वीतराग पुरुष की वाणी! आत्मा के परम शांतरस को बतलानेवाली यह वाणी अपूर्व है.... वीतरागी संतों की वाणी परम अमृत है.... भवरोग का नाश करने वाली अमोघ औषधि है!

श्रीमद् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेव कृत

श्री नियमसारजी

महान आध्यात्मिक शास्त्र, संस्कृत टीका सहित जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से माँग है, पूर्ण रूप से संशोधित पृष्ठ संख्या ४०० बड़े साइज में १५ दिन बाद छपकर तैयार हो जावेगा। जिज्ञासुगण शीघ्र आर्डर भेजकर मंगवा लेवें।

मिलने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

[जैन-जैनेतर समाज में अवश्य प्रचार में लाने योग्य यह उत्तम साहित्य है।]

मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरण भाग-२ (दूसरी आवृत्ति)

जिसमें मोक्षमार्गप्रकाशक अ० ७ के ऊपर पूज्य कानजी स्वामी के व्याख्यानों का संग्रह है; मोक्षमार्ग के विषय में, तत्वार्थ श्रद्धान के विषय में अनेक विवादों का सच्चा समाधान है।

जिज्ञासुओं से प्रार्थना है कि इसे एकाग्र चित्त से पढ़कर धर्म के नाम पर सूक्ष्म और स्थूल गलत फहमी किस रूप में है, बराबर समझें। आत्महितरूप सच्चा प्रयोजन के लिये यह ग्रंथ विशेषरूप से पढ़ने योग्य है। पृ० संख्या ४७० मूल्य २) पोस्टेजादि अलग।

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) दूसरी आवृत्ति

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से मांग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकान्त पूर्वक नयार्थ भी दिये हैं और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्व प्रेमिओं को यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र सं० ९०० करीब मूल्य लागत मात्र ५), पोस्टेज आदि अलग। पचास ग्रन्थ मंगानेवालों को दस टका कमीशन; सौ पुस्तक में बीस टका कमीशन और १० पुस्तक से कम मंगाने पर कमीशन नहीं देंगे।

पता— श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मूल में भूल	।।।)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन (दूसरी आवृत्ति)	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समाधितन्त्र	२ ।=
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	स्तोत्रत्रयी	॥)
द्वितीय भाग	२)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
द्वितीय भाग	॥–)	आत्मधर्म फाइलें १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष	३ ।।।)
तृतीय भाग	॥–)		
जैन बालपोथी	।)	शासन प्रभाव	=)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।